P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika
E: ISSN NO.: 2349-980X Vol-III* Issue-VI* February-2016

जाति, धर्म और समाज : डॉ. बी.आर. अम्बेडकर के चिन्तन के संदर्भ में

चित्रा प्रभात
प्राध्यापिका,
राजनीतिशास्त्र विभाग,
शासकीय तिलक महाविद्यालय,
कटनी, मध्य प्रदेश

सारांश

किसी समाज की वैचारिक तथा व्यवस्थागत संरचना में उसकी पारम्परिक संस्थाओं और मूल्यों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इन मूल्यों और संस्थाओं के परिवर्तन की सम्बद्धता सामाजिक परिवतन और प्रक्रियाओं में परिलक्षित होती है। धर्म तथा जातिगत विविधताओं पर आधारित भारतीय सामाजिक संरचना में धर्म और जाति के अवधारणात्मक, समालोचनात्मक तथा व्यावहारिक पक्षों की उपादेयता का अध्ययन समीचीन है। सामाजिक न्याय की स्थापना के संदर्भ में, सम्बद्ध समाज–सापेक्षी विचारकों–द्वारा भारतीय समाज की संस्थाओं तथा अवधारणाओं के विश्लेषण का आधार धर्म एवं जाति व्यवस्था के आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन का है। सामाजिक नवनिर्माण के क्षेत्र में यह संस्थागत प्रक्रिया महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है। डॉ. अम्बेडकर इस विचार से सहमत हैं कि भारतीय समाज के पुनर्निर्माण में व्यवहारिकता के आधार पर धर्म को वस्तुगत दृष्टि से संशोधित, परिष्कृत एवं सक्रियता प्रदान कर, सामाजिक प्रक्रियाओं से सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया जाना चाहिए। अम्बेडकर के मतानुसार जाति अथवा वर्ण व्यवस्था ही समस्त सामाजिक विकृतियों, असमानता, शोषण तथा अत्याचार की उत्पत्ति का स्त्रोत है और जाति व्यवस्था की सर्वांगीण समाप्ति की सामाजिक न्याय की स्थापना की दिशा में सक्रिय तथा सफल कदम हो सकता है। प्रस्तुत शोध पत्र डॉ. अम्बेडकर के जाति, धर्म और समाज के चिन्तन के विषय में लिखा गया है। शोध पत्र द्वितीयक स्त्रोतों पर आधारित है। शोध पत्र में अनुभव प्रणाली का प्रयोग किया गया है।

मुख्य शब्द : जाति, धर्म तथा समाज।

प्रस्तावना

भारतीय समाज की विभिन्न संस्थाओं तथा परम्पराओं का समाज के किसी भी व्यक्ति द्वारा सहसा उल्लंघन न कर पाने का एक महत्वपूर्ण कारण यह था कि अमुक परम्परा या संस्था को धर्म या शास्त्रों द्वारा मान्यता प्राप्त थी। सामाजिक इकाई के रूप में व्यक्ति द्वारा किये जाने वाले प्रत्येक कार्य को धार्मिक आधार प्रदान किया गया था। इसी श्रृंखला में असमानता तथा अत्याचार पर आधारित जाति व छुआछूत की प्रथा को एक धार्मिक कत्तव्य मानकर उसका पालन किया जाना अनिवार्य था। अतः डॉ. अम्बेडकर ने एक सामाजिक क्रान्तिकारी के रूप में, प्रजातांत्रिक समाज की स्थापना के मार्ग में बाधक परम्परागत ब्राह्मणवादी हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों में आमूल परिवर्तन करके उसे अपने लक्ष्य की पूर्ति में सहायक या साधन के रूप में प्रस्तुत किया।

डॉ. अम्बेडकर कोई साधू, सन्त अथवा योगी नहीं थे। वे समतावादी समाज के महान पक्षधर होने के नाते ''धर्म को एक सामाजिक सिद्धान्त मानते थे, आत्मा द्वारा आध्यात्मिक मोक्ष की प्रप्ति का साधन नहीं।''[1] यही कारण है कि, स्वयं हिन्दू धर्म की अच्छाईयों व बुराईयों की समीक्षा करना उनका साध्य नहीं था, अपितु धार्मिक विचारों व सिद्धान्तों का निरूपण उन्होने सामाजिक सन्दर्भ में किया। उनका लक्ष्य हिन्दू समाज से सम्बद्ध था, हिन्दू धर्म से होने के कारण सामाजिक–व्यवस्था में हस्तक्षेप करने वाला सहज ही धर्म से सम्बद्ध हो जाता है। अम्बेडकर ने समाज की संरचना का अध्ययन व अवलोकन करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि यदि असमानता और अन्याय की पोषक जाति व्यवस्था तथा अस्पृश्यता को समाप्त करना है तो इनके औचित्य को सिद्ध करने वाले हिन्दू धर्म शास्त्रों की ''सार्वभौमिकता'' को नष्ट कर हिन्दू धर्म की तद्नुसार पुनर्व्याख्या करना अनिवार्य है। उन्होने इस सन्दर्भ में न केवल हिन्दू धर्म की कमजारियों पर तार्किक प्रहार किया अपितु धर्म के वास्तविक स्वरूप व विशेषताओं की सामाजिक संदर्भ में विवेचना भी की।

उन्होंने जाति प्रथा में व्याप्त विसंगतियों की ओर संकेत करते हुए, वास्तविक धर्म के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा कि ''वह धर्म जो अपने दो अनुयायियों में भेदभाव'' उत्पन्न करता हो, वह धर्म जो अपने अनुयायियों के बीच वैमनस्यता को उत्पन्न करता हो, वस्तुतः वह धर्म ही नहीं है। धर्म तथा दासता आपस में एक दूसरे के विरोधी है।[2] उनका विचार था कि धर्म गरीबों के लिए आशा तथा सन्तोष का स्त्रोत होता है लेकिन वह धर्म विवेक, नैतिकता, स्वतन्त्रता, समानता व भ्रातृत्व का विरोधी न हो। गरीबी के समर्थन के स्थान पर जो अपने अनुयायियों की सम्पन्नता तथा स्वतन्त्रता का समर्थक हो। इस आधार पर हिन्दू धर्म उपयुक्त नहीं है, क्योंकि इसमें सहनशीलता व निरपेक्षता के स्थान पर अधर मे लटकी हुई स्वतन्त्रता तथा उपेक्षा है।[3]

उद्देश्य

जाति एवं धर्म के आधार पर समाज में वैचारिक एवं व्यवस्थागत परिवर्तन सामान्यतः परिलक्षित होते है। विभिन्न विद्वानों ने अपने–अपने तर्कों के आधार पर जाति एवं धर्म को समाज में परिभाषित किया है। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य समाज में धर्म एवं जाति के आधार पर पोषित होने वाले तथ्यों का अवलोकन करना है ताकि चिरकाल से समाज में चली आ रही जाति एवं धर्म के प्रति धारणाओं के परिवर्तित स्वरूप के प्रति एक नई सोच एवं समझ विकसित की जा सके।

अम्बेडकर के चिन्तन में धर्म की अवधारण

डॉ. अम्बेडकर जातीय एवं वर्ण व्यवस्था रूपी आग के दरिया से तप कर निकले थे। वे समाज के लिए धर्म को आवश्यक मानते थे, किन्तु धर्म के नाम पर तथाकथित् कर्मकाण्ड के विरोधी थे। अतः डॉ. अम्बेडकर ने धर्म के चार लक्षण बताए–

1. धर्म नैतिकता की दृष्टि से प्रत्येक समाज का मान्य सिद्धान्त है।
2. धर्म बौद्धिकता पर टिका होना चाहिए जिसे दूसरे शब्दों में विज्ञान कहा जा सकता है।
3. इसके नैतिक नियमों में स्वतंत्रता, समानता और भातृभाव का समावेश हो।
4. धर्म को दरिद्रता को प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए।[4]

इस प्रकार अम्बेडकर समाज के लिए धर्म का बहिष्कार नहीं करते, वे धर्म को समाप्त नहीं करते वरन् धर्म के आधार को इस प्रकार परिवर्तित करना चाहते हैं कि उसकी शिक्षाओं से स्वयंमेव सामाजिक न्याय की परिमार्जन करे कि व्यक्ति संस्कार से ही समाज के प्रत्येक नागरिक को एक समान समझ कर उसका आदर करे। उन्होने दो प्रकार के धर्म का विवेचन किया है–सिद्धान्तों पर आधारित, एवं नियमों पर आधारित धर्म।

सिद्धान्त विवेकयुक्त होने के कारण व्यक्ति के कार्य का मूल्यांकन करने में उपयोगी होते हैं। सिद्धान्त व्यक्ति को कुछ निर्धारित कार्यों को करने का अनुदेश नही देते। सिद्धान्त उत्तरदायित्व बोध से युक्त ह जबकि नियम व्यवहारिक होने के कारण किसी काम को परम्परागत तरीके से करने की विवरणिका है। नियम सापेक्ष होते है, जबकि सिद्धान्त निरपेक्ष। इसी सन्दर्भ में अम्बेडकर का कहना था कि धर्म केवल सिद्धान्तों का मुद्दा होना चाहिए, धर्म नियमों का मुद्दा नहीं हा सकता। जिस क्षण यह सिद्धान्त के स्थान पर नियमों पर आधारित होना लगता है, यह ''धर्म'' होने से ही वंचित हो जाता है क्योंकि, यह उत्तरदायित्व की भावना को समाप्त कर देता है जो कि असली धार्मिक कार्यो का सारांश है।[5]

इसी परिप्रेक्ष्य में हिन्दू धर्म के अध्ययन से अम्बेडकर ने पाया कि हिन्दु धर्म असंख्य नियन्त्रणों तथा प्रतिबन्धों पर आधारित होने के कारण कुछ विशेष निर्धारित कार्यों का उल्लेख करता है। सदाचार के अनुसार एक हिन्दू धर्म के अनुयायी से अपेक्षा की जाती है कि वह पुरातन परम्पराओं का पालन करेगा, चाहे वे अच्छे हा या बुरे। इस प्रकार हिन्दू धर्म को उन्होने नियमों पर आधारित पाया और इस रूप में उसे ''धर्म'' मानना अस्वीकार कर दिया।[6]

विभिन्न धर्म की मूलभूत समानता में उनका विश्वास था तथा भावी भारतीय राजनीति को धर्म निरपेक्ष बनाना चाहते थे। उनका मानना था कि धर्म निरपेक्षता का अर्थ धर्म को समाप्त करना नहीं, अपितु राजनीति को धर्म से पृथक् रखने से है। वे धर्म के नाम पर पाले गये कर्मकाण्डों तथा पाखण्डों के भी सख्त विरोधी थे।[7]

अतएव स्पष्ट है कि अम्बेडकर धर्म को एक सामाजिक बल मानते थे। वे उनका मानना था कि वास्तविक धर्म समाज की नींव होता है तथा जिस पर सभी वास्तविक नागरिक सरकारें निर्भर रहती हैं। समाज तथा राजनीति (सरकार) दोनों जिससे अपने नियम प्राप्त करती हैं।[8]

धर्म की उपर्युक्त अवधारणा के आधार पर अम्बेडकर ने हिन्दू धर्म के वैचारिक तथा व्यावहारिक पक्ष में निम्नलिखित तत्वों की न केवल आलोचना की, अपितु उन्हे समाप्त करने के लिए आजीवन सक्रिय रहे। क्योंकि हिन्दू धर्म में सुधारों के परिणाम स्वरूप ही ''सामाजिक न्याय'' की स्थापना की जा सकती थी। वैचारिक स्तर पर उनका मानना था कि–

हिन्दू धर्म व्यक्ति के नैतिक जीवन को स्वतन्त्रता तथा स्वच्छन्दता से वंचित करके उसके ऊपर थोपे गये नियमों को मानने के लिए बाध्य करता है।

इसमें विचारों के प्रति आस्था व कर्त्तव्य भाव न होकर केवल आदेशों की अनुपालना है।

इसके नियम समाज के सभी वर्गों के लिए समान नहीं है तथा आगे आने वाली पीढ़ियों के लिए पूर्व निर्धारित हैं।

इस धार्मिक संहिता की प्रकृति निश्चित है जिससे परिवर्तन नहीं किया जा सकता।[9]

समाज में जाति प्रथा के आधार पर अलगाव स्वयं धर्म के कारण है। यह सर्वज्ञात है कि जाति प्रथा राष्ट्र में एकता के आधार पर अलगाव की शिक्षा देती है। इसीलिए समाज में अस्पश्यता कायम है।[10] हिन्दू अपने आप में न तो अमानवीय है और न ही उनका दिमाग खराब हो जाने से वे जाति व्यवस्था का पालन करते हैं। अपितु इसलिए कि वे गहन रूप में धार्मिक है तथा शास्त्र ही जाति की अनुपालना का आदेश देते हैं। अतः जाति व्यवस्था के आडम्बरी आवरण को नष्ट करना होगा।[11]

यद्यपि यह सच है कि हिन्दू धर्म ने विद्यमान सामाजिक कुरीतियों को अपना अंग बना लिया है लेकिन अम्बेडकर द्वारा किये गये सैद्धान्तिक व नियमों पर

आधारित धर्मों की कसौटी पर हिन्दू धर्म का परीक्षण किया जाय तो ज्ञात होता है कि हिन्दू धर्म के कुछ निश्चित सिद्धान्त होते हुए भी वह नियमों पर आधारित है जैसे–सैद्धान्तिक रूप से हिन्दू धर्म में विचारों की पूर्ण स्वतन्त्रता है, लेकिन व्यवहार में व्यक्ति की विभिन्न सामाजिक गतिविधियों और कार्यकलापों को इस प्रकार मर्यादित तथा नियन्त्रित किया गया है कि वह स्वतन्त्र रूप से सोच भले ही ले, व्यवहार तो उसका प्रतिबंधित ही होगा। दूसरा, वैचारिक स्वतन्त्रता का ही परिणाम है कि समय और स्थान की भिन्नता के साथ ही तथाकथित हिन्दू शास्त्रों द्वारा निर्धारित नियमों में मतभेद ही नहीं अपितु वे परस्पर विरोधी भी हो सकते हैं जैसे– मनु स्त्रियों का ''तलाक'' का अधिकार नहीं देता लेकिन 'नारद स्मृति' देती है।

डॉ. बी.आर. अम्बेडकर की विचार धारा में यह विरोधाभास है कि जब सैद्धान्तिक रूप से वे सामाजिक असमानताओं की संवाहक जाति व्यवस्था, अस्पृश्यता या स्त्रियों की स्थिति में गिरावट के लिए शास्त्रों को मूलाधार मानते हैं तो इन धर्म शास्त्रों की आलोचना करते हैं। लेकिन स्वयं अम्बेडकर हिन्दू धर्म व समाज में एक रूपता लाने के लिए संसद में ''हिन्दू कोड बिल'' प्रस्तुत करते हैं तो अपने मत के समर्थन में हिन्दू धर्म ग्रन्थों व स्मृतियों को साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत करते हैं और कहते हैं कि तलाक प्रथा का कौटिल्य तथा ''पाराशर स्मृति'' द्वारा समर्थन किया गया है तथा स्त्रियों की सम्पत्ति के अधिकार को 'बृहस्पति स्मृति' में स्वीकार किया गया है।[12]

उनका यह आरोप था कि हिन्दू धर्म असमानता की जड़ है। लेकिन ऐसा आक्रोश व भावावेश में कहते हुए वे ये भूल जाते हैं कि वह हिन्दू धर्म ही है जो ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' का आदर्श प्रस्तुत करता है। अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वस्तुतः हिन्दू धर्म भी अपने मौलिक रूप में समानता पर आधारित था। लेकिन समय के अन्तराल के साथ उभरे जन्म पर आधारित जातीय वर्गों के परिणाम स्वरूप अपने आपको सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठित करने वाले वर्ग मे न केवल अन्य वर्गों को उनके अधिकारों से वंचित रखने के लिए धर्म शास्त्रों का सहारा लिया अपितु वर्चस्व को बनाये रखने के लिए स्वयं कानून निर्माता व समाज का नियामक बन बैठा अतः अम्बेडकर द्वारा की गई ब्राह्मणवाद की आलोचना औचित्य पूर्ण है। लेकिन सामाजिक असमानता के लिए मूल रूप से हिन्दू धर्म को उत्तरदायी मानना ठीक नहीं। हिन्दू धर्म में निहित वैचारिक स्वतंत्रता का ही परिणाम है कि सम्पूर्ण विस्तृत भारतीय समाज की धार्मिक परम्पराओं में एक व अन्तिम पवित्र ग्रन्थ न होकर अनेक ग्रन्थ है। यदि अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए समाज के एक वर्ग ने दूसरे वर्ग पर निम्नता या अपवित्रता थोपी तो यह धर्म का दोष न होकर उसके अनुयायियों का है। अम्बेडकर द्वारा हिन्दू धर्म में निम्नलिखित सुधारों का प्रस्ताव रखा गया ताकि हिन्दू धर्म में सामंजस्य व एकरूपता लायी जा सके तथा उसे एक जीवन्त शक्ति बनायी जा सके।

पुरोहित के व्यवसाय का वंशानुगत आधार समाप्त करके इसे स्वतन्त्र रूप से व्यक्ति की इच्छा पर छोड़ दिया जाय और पुरोहित का पद प्राप्त करने के लिए एक परीक्षा उत्तीर्ण करना अनिवार्य हो। उसे पुरोहित के काम के लिए सनद प्रदान की जाय।

पुरोहित राज्य के अधीन सेवक हो तथा नैतिकता, विश्वास तथा पूजा के संदर्भ में राज्य को उसके विरूद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही करने का प्रावधान हो।

राज्य को आवश्यकता के अनुसार पुरोहित की संख्या सीमित की जाय तथा विधि द्वारा परोहित वर्ग को राज्य के नियन्त्रण में लिया जाना चाहिए।

इस प्रकार की व्यवस्था पुरोहितों को क्षति पहुंचाने या गुमराह करने से रोकेगी। इस पद को सभी के लिए मुक्त रखना प्रजातन्त्र का लक्षण है जो निश्चित रूप से ब्राह्मणवाद व जातिवाद को समाप्त करने में सहायक होगा। ब्राह्मणवाद के जहर ने हिन्दुत्व को नष्ट किया है। यदि ब्राह्मणवाद को नष्ट कर दें तो ही आप हिन्दुत्व को बचाने में सफल हो सकते हैं।[13]

डॉ. अम्बेडकर का मत था कि जब से हिन्दुओं में जाति व्यवस्था का विकास हुआ, हिन्दु धर्म एक प्रचारक धर्म होने से वंचित रह गया और जब तक जाति व्यवस्था कायम रहेगी, हिन्दु धर्म प्रचारक धर्म नहीं बन सकता।[14]

सामाजिक समानता की स्थापना के मार्ग में बाधक के रूप में हिन्दु धर्म की समीक्षा व उसमें सुधारों की प्रबल मांग के बावजूद अम्बेडकर ने अनुभव किया कि हिन्दु बहुसंख्यकों का मानस न केवल मुख्य रूप से असमानता के सिद्धान्त पर आधारित है अपितु विभिन्न समुदायों के मध्य पारस्परिक सम्बन्धों का संचालन भी क्रमगत असमानता के नियम के अनुसार किया जाता है जो भ्रातृत्व तथा स्वतन्त्रता के प्रतिकूल है। यह विश्वास नहीं किया जा सकता कि इस प्रकार कि यह असमानता कभी समाप्त भी होगी या हिन्दु समाज इसे समाप्त करने का प्रयास भी करेगा। यह असमानता संयोग की बात न होकर हिन्दुओं का धर्म होने के कारण स्थायी है।[15] अस्पृश्यता व जाति व्यवस्था के जन्म तथा विकास में सहायता देने वाली सभी प्रथाओं, कारकों, परम्पराओं तथा धर्म शास्त्रों की सम्पूर्ण समीक्षा के बाद, अम्बेडकर का इन सब कारकों को समापत करके समानता पर आधारित वर्गविहीन समाज की स्थापना, पुर्नगठन करने के सभी प्रस्तावों का सवर्गों पर कोई प्रभावकारी असर दिखायी नहीं दिया। अतः अपने धर्म में अपेक्षित सुधार व परिवर्तन की कोई आशा दिखाई न देतो देखकर ''अक्टूबर 1935 को अम्बेडकर के नेतृत्व में, दलित वर्गों की यओली सभा (बॉम्बे) में प्रस्ताव पारित कर'' अछूतों के समानता व स्वतन्त्रता के अधिकार पाने के प्रयासों के प्रति सवर्ण हिन्दुओं के कठोर व आततायी व्यवहार से निराश होकर धर्म परिवर्तन को समस्या के निदान के रूप में घोषित किया गया।[16] लेकिन प्रश्न यह था कि हिन्दू धर्म के बाद ऐसे किस धर्म को स्वीकार किया जाय तो दलितों को अपने प्राकृतिक अधिकार सौंप दे। दीर्घ चिन्तन के बाद अम्बेडकर इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि उनकी कल्पना व विचार के अनुरूप दलित वर्ग को समानता बौद्ध धर्म में ही मिल सकती है। अतः 14 अक्टूबर 1956 को बौद्ध धर्म अंगीकार करने के बाद अम्बेडकर ने घोषणा की कि असमानता तथा दमन पर आधारित अपने पुराने धर्म को त्याग कर मैं दुबारा जन्मा हूँ।[17] अम्बेडकर द्वारा ग्रहण किये गये बौद्ध धर्म के चिन्तन व अभिव्यक्त विचारों के

आधार पर बौद्ध धर्म स्वीकार करने के कई कारण हो सकते हैं।

डॉ. अम्बेडकर ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि अछूत आरम्भ में बौद्ध धर्म के अनुयायी थे। अपने शोधग्रन्थ ''द अनटचैबल्स'' में उन्होने यह सिद्ध किया।

बौद्ध धर्म भारतीय धर्म था तथा भारतीय संस्कृति का अंग था साथ ही, गौतम बुद्ध अछूत जनता से अधिक करीब थे।

उनका मानना था कि बौद्ध धर्म गहनतम वैज्ञानिक परीक्षा का सामना कर सकता है तथा इसमें आधुनिक विश्व के भाग्य को दिशा निर्देश देने की शक्ति व सामर्थ्य है।

विश्व बौद्ध सम्प्रदाय से जुड़कर अछूत विश्व बन्धत्व का मार्ग प्रशस्त करेंगे। मई 1956 में बी.बी.सी. को दिये गये साक्षात्कार में उन्होने बौद्ध धर्म को प्राथमिकता दिये जाने का कारण उसमें निहित तीन सिद्धान्तों के अस्तित्व को बताया था–प्रज्ञा (अन्धविश्वासों के विरूद्ध), समानता, करूणा या प्रेम।[18]

डॉ. अम्बेडकर द्वारा जाति व्यवस्था से मुक्ति के लिए जाति व्यवस्था के प्रचारक व समर्थक धर्म व समाज का त्याग कर धर्म परिवर्तन करना सर्वाधिक आश्चर्यजनक कदम था। दूसरी आश्यर्चजनक बात थी कि अम्बेडकर द्वारा धर्म परिवर्तन सम्पूर्ण समुदाय के रूप में न किया जाकर व्यक्तिगत रूप में किया गया। लेकिन समानता, स्वतन्त्रता व न्याय की प्राप्ति के लिए उठाये गये इस अन्तिम व आश्चर्यजनक कदम के बावजूद सामाजिक न्याय की स्थापना की पहेली बुझी नहीं है। अतः प्रश्न उठता है कि हिन्दू धर्म को त्याग कर क्या सामाजिक असमानता तथा दमन से मुक्ति पायी जा सकती है ?

यह सच है कि मुख्य रूप से स्पष्टतः जाति व्यवस्था का अस्तित्व हिन्दू समाज में ही विद्यमान है किन्तु इसकी भावना अन्य समुदायों में भी विद्यमान है। यह आवश्यक नहीं है कि समाज में व्यक्तियों के सम्बन्धों का आधार समानान्तर या क्षैतिजीय हो, अधिकांशतया सम्बन्धों का आधार वर्तुलाकार होता है। जब व्यक्ति अपना धर्म छोड़कर दूसरे धर्म में जाता है तो पुराने संस्कार व सामाजिक स्थिति उसका पीछा नहीं छोड़ती। धर्म परिवर्तन द्वारा न्याय की प्राप्ति की इस आशा के विषय में गांधी ने उचित ही कहा था कि यदि हरिजनों को वास्तविक स्वतन्त्रता व समानता मिली तो वह सर्वप्रथम हिन्दू धर्म में ही मिलेगी, किसी अन्य धर्म में नहीं। हरिजन चाहे औपचारिक रूप से मुसलमान, सिक्ख, इसाई या हिन्दू हो, फिर भी वह हरिजन ही है। हिन्दुत्व से मिले अस्पृश्यता के वंशानुगत दाग को वह धर्म परिवर्तन द्वारा नहीं धो सकता।[19]

यह मानना यथार्थ के प्रतिकूल होगा कि धर्म परिवर्तन द्वारा नयी सामाजिक व्यवस्था में प्रवेश के परिणाम स्वरूप व्यक्ति की पुरानी सामाजिक स्थिति स्वतः समाप्त हो जायेगी। किसी जाति विशेष में जन्म के आधार पर किये जाने वाले सामाजिक पृथक्करण को हिन्दुत्व के परित्याग द्वारा समाप्त नहीं किया जा सकता। यद्यपि अम्बेडकर स्वय इस तथ्य से अवगत थे कि ''हिन्दुत्व की श्वांस'' के रूप में विद्यमान जाति व्यवस्था ने सारी हवा को दूषित कर सिक्ख, मुसलमान व ईसाई समाज के हर व्यक्ति को प्रभावित कर लिया है।[20] लेकिन उन्होने इसकी गहराई में उतरे बगैर धर्म परिवर्तन कर लिया और हिन्दू समाज तथा धर्म से लोहा लेने की नीति का परित्याग कर दिया, परिणाम स्वरूप बौद्ध धर्म ने अम्बेडकर को जीवन के अन्तिम शेष लगभग दो महीने में मानसिक संतोष भले ही प्रदान किया हो, लेकिन वे अछूतों को स्वतन्त्रता, समानता व भ्रातृत्व के रूप धर्म में परिवर्तन द्वारा प्रस्तावित पूर्ण न्याय की प्राप्ति में सफल न हो सके, जो उनके जीवन का लक्ष्य था।

डॉ. अम्बेडकर एवं जाति–व्यवस्था

डॉ. अम्बेडकर ने समाज के एक बड़े समूह को समस्त मानवीय अधिकारों, स्वतन्त्रता, समानता, भ्रातृत्व आत्मा–सम्मान, आत्मभिव्यक्ति, भौतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति से वंचित करने के लिए जाति व्यवस्था को उत्तरदायी माना। उन्होने गहन अध्ययन तथा विश्लेषण द्वारा जाति व्यवस्था को उत्पत्ति, प्रकृति, विशेषताओं और कमजोरियों को स्पष्ट करते हुये यह स्थापना दी कि जब तक जाति–व्यवस्था कायम रहेगी, भारतीय समाज न जो समानता पर आधारित रह सकता है और न हो ऐसी व्यवस्था में व्यक्ति को अपने प्राकृतिक मानवाधिकार ही हांसिल हो सकते हैं। सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए काम करने वाले तत्कालीन समाज सुधारकों के दृष्टिकोण से डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा का भेद इस आधार पर था कि अन्य समाज सुधारकों (राजा राममोहन रॉय, दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द, रानाडे एवं फुले) ने विद्यमान कुरीतियों–विधवा पुनर्विवाह निषेध, नारी अशिक्षा, बाल–विवाह, अस्पृश्यता आदि का समान रूप से विरोध करते हुए इस क्षेत्र में सुधार के लिए प्रचार व कार्य कि, जबकि अम्बेडकर का मानना था कि समस्त कुप्रथाओं आर असमानताओं की जड़ जाति व्यवस्था में है। अतः यदि जाति व्यवस्था समाप्त हो जाये तो समानता पर आधारित हिन्दु समाज का पुनर्निमाण सम्भव हो सकता है। जाति व्यवस्था कोई मूर्त इमारत या वस्तु नहीं थी जिसे तोड़कर तुरन्त नयी इमारत का स्थानापन्न कर दिया जाता। जाति ईंटों की दीवार या कांटेदार तारों की रेखा जैसी कोई वस्तु नहीं है, जो हिन्दुओं का आपसी मेल मिलाप से रोकती हो, जाति तो एक धारणा है और यह एक मानसिक स्थिति है।[21] डॉ. अम्बेडकर का कहना था कि जाति प्रथा तथा अस्पृश्यता एक प्रवृत्ति तथा मानसिक अवस्था है। अतः उन्होने इसकी उत्पत्ति सहित सभी पक्षों पर प्रकाश डाला। वे मानते थे कि जाति व्यवस्था के नियमों का निर्माण मनु ने नहीं किया और वह कर भी नहीं सकता था। लेकिन एक वर्ग पर दूसरे वर्ग की सर्वोच्चता के दर्शन की स्थापना करके उसने जाति व्यवस्था का समर्थन किया। आरम्भ में हिन्दू समाज चार वर्गों में विभाजित था–सवर्ण या पुरोहित वर्ग, क्षत्रिय या सैनिक वर्ग, वैश्य या व्यापारी वर्ग, तथा शूद्र या दास वर्ग।

इन वर्गों द्वारा कुछ परम्पराओं के पालन के परिणाम स्वरूप ये वर्ग स्वकेन्द्रित इकाई बन गये जिसे जाति कहा गया। कुछ जातियों ने अपने द्वारा अन्य जातियों के लिए बन्द कर दिये और कुछ ने इन द्वारों को अपने लिए बन्द पाया। अनुकरण की संक्रामक प्रवृत्ति के कारण इस व्यवस्था का कैंसर पूरे हिन्दू समाज के शरीर

में फैल गया। सर्वप्रथम सवर्ण वर्ग ने विवाह हेतु अपने द्वारा अन्य जातियों के लिए बन्द किये और यह वर्ग अपने आप तक सिमट कर रह गया। शेष वर्गों ने सवर्ण वर्ग का अनुकरण किया जिसके परिणामस्वरूप सभी वर्ग स्वकेन्द्रित हो गये। डॉ. अम्बेडकर ने ग्रेबी टारडे की –''अनुकरण की प्रवृत्ति'' की वैज्ञानिक व्यख्या को स्वीकार किया। इस व्याख्या में ग्रेबी टारडे ने अनुकरण के तीन नियम बताते हुए यह स्थापना दी कि अनुकरण का प्रवाह ऊपर से नीचे की ओर होता है। जाति व्यवस्था पूर्णतया टारडे के कानून की व्याख्या है और इसमें कोई संदेह कि भारत में जाति व्यवस्था के निर्माण की प्रकिया निम्न स्तर द्वारा उच्च स्तर के अनुकरण की प्रकिया है।[22] इस प्रकार डॉ. अम्बेडकर के मतानुसार चतुर्वर्ण ही आगे चलकर जाति व्यवस्था के रूप में विकसित हुआ और ये जातियॉ अपनी आत्मकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति के कारण कई उपजातियों में विभाजित होती गई। समाज का जन्म तथा वंशानुगत व्यवसायों की प्रतिबन्धिता के आधार पर किया गया। विभाजन पूर्णतया अप्राकृतिक तथा ऊपर से थोपा गया है। जाति व्यवस्था केवल श्रम का विभान न होकर श्रमिकों का विभाजन भी है। यह एक प्रकार का पुरोहितों का प्रशासन है। जिसमें श्रमिकों का क्रमानुगत (एक के नीचे दूसरा) वर्गीकरण किया गया है। श्रम का यह विभाजन प्राकृतिक नहों था। यह न तो प्राकृतिक योग्यता पर और न ही चलन पर आधारित था। जाति व्यवस्था पहले से ही व्यक्ति के कार्य का निर्धारण कर देती है जो प्रशिक्षित मौलिक सामर्थ्य पर आधारित न होकर व्यक्ति के माता पिता की स्थिति पर आधारित होती है। जाति व्यवस्था में व्यवसाय परिवर्तन की स्वतन्त्रता न होने के कारण वह प्रत्यक्ष रूप से बेरोजगारी का कारण बन गई। इसी परिप्रेक्ष्य में डॉ.अम्बेडकर का मानना था कि जाति व्यवस्था आर्थिक दृष्टि से एक हानिकारक संस्था है जो व्यक्ति की प्राकृतिक शक्तियों के स्वाभाविक व स्वतन्त्र विकास को अवरूद्ध कर परतन्त्र बनाती है तथा निर्धारित सामाजिक नियमों को स्वीकार करने की बाध्य करती है।[23] जाति व्यवस्था में समाज के वर्गीकरण का आधार ही असमानता है इसलिए इस व्यवस्था में व्यक्ति को न तो उसके प्राकृतिक अधिकार मिल सकते हैं और ना ही वह ऐसे समाज में न्याय प्राप्ति की अपेक्षा कर सकता है। अम्बेडकर का मानना था कि जातिगत आधार पर गठित हिन्दू समाज एकता के स्थान पर अलगाव को प्रोत्साहन देता है।[24] इन जातियों की स्वायत्तता तानाशाही की व्यवस्था तक झाँकते हुए डॉ. अम्बेडकर ने स्पष्ट किया कि कहीं भी ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो इन्हे अपने सामाजिक जीवन में किसी नये व्यक्ति को शामिल करने के लिए बाध्य कर सके, यही कारण है कि हिन्दू समाज में ऐसे व्यक्ति के लिए कोई स्थान नहीं जो धर्म परिवर्तन करके हिन्दूमत में आया हो। हिन्दू समाज विभिन्न जातियों का संगठन है जिसके अन्तर्गत प्रत्येक जाति अपने आप में एक बन्द समाज है।[25] जाति व्यवस्था द्वारा निर्धारित नैतिक, धार्मिक तथा सामाजिक संहिता का विरोध करने वाली कोई भी नई पद्धति जाति को स्वीकार्य नहीं हो सकती। यदि कोई व्यक्ति ऐसा साहस भी करे तो जाति से बाहर किये जाने का भय इतना प्रबल होता है कि वह निराश होकर यथा स्थिति को स्वोकार करना ही हितकर समझता है क्योंकि वह जानता है कि यदि वह अपनी से बहिष्कृत कर दिया गया तो अन्य कोई भी जाति उसे स्वीकार नहीं करेगी। ऐसी अवस्था में जाति व्यवस्था से निष्कासन का अर्थ है–सामाजिक बहिष्कार। जाति व्यवस्था की इस कठोरता के परिणाम स्वरूप ही एक छोटे से नये विचार से नयी जाति का जन्म हो जाता है क्योंकि पुरानी जाति उस विचार को स्वीकार नहीं कर सकती। इस प्रकार जातिगत संहिता का उल्लंघन करने वाले पापी के प्रति सम्बद्ध जाति किसी प्रकार की सहानुभूति नहीं रखती। अतः दण्ड स्वरूप व्यक्ति का जाति निष्कासन किया जाता ह और परिणाम स्वरूप नयी जाति का जन्म होता है।[26] जाति व्यवस्था के बन्धनों में जकड़े समाज के व्यक्ति को किसी प्रकार की आत्माभिव्यक्ति का अवसर मिलने का तो प्रश्न ही नहीं था। लेकिन अम्बेडकर का हृदय यह देखकर व्यथित हो उठा कि विभिन्न जातियों के गठन का आधार भी असमान था। समाज में मुख्य रूप से वर्गों में क्रमानुगत असमानता, शूद्रों तथा अछूतों का पूर्णतया निःशस्त्रीकरण, शूद्रों तथा अछूतों की शिक्षा प्राप्ति पर पूर्णतया प्रतिबन्ध, शक्ति तथा सत्ता के पदों से शूद्रों और अछूतों का पूर्णतया निष्कासन, शूद्रों व अछूतों के सम्पत्ति रखने पर पूर्णतया प्रतिबन्ध, स्त्रियों का पूर्णतया दमन इन्ही छः सिद्धान्तों के आधार पर जातिगत विसंगतियों को कायम रखा गया।[27]

उपर्युक्त निष्कर्षों के माध्यम से अम्बेडकर ने सिद्ध किया कि समाज की समस्त गतिविधियों के संचालन का सर्वाधिकार अपने पास सुरक्षित रखकर ब्राह्मणों ने न केवल समाज में अपनी सर्वोच्च स्थिति को कायम कर विशेषाधिकारों को अपने ही लिए आरक्षित कर लिया अपितु, समाज के अन्य वर्गों का क्षैतिजीय आधार पर वर्गीकरण करके शूद्रों को समस्त मानवीय अधिकारों से वंचित किया और ऐसे कानून बनाये ताकि शूद्र न कभी अपनी दीन हीन अवस्था के प्रति जागरूक हो सकें और न ही इतने साधन सम्पन्न, कि वे अपनी सामर्थ्य के द्वारा अधिकार प्राप्त कर लें, इसी उद्देश्य से उन्हे शिक्षा, शास्त्र तथा सम्पत्ति से वंचित रखा गया। उन्होने यह भी स्पष्ट किया कि शूद्रों के समान ही स्त्रियों पर भी इसी प्रकार की समस्त निर्योग्यताओं को धर्मशास्त्रों के नियमों का जामा पहना कर पुनः समाज की आधी आबादी का दमन करके अपने सर्वाधिकारों का स्वच्छन्द उपभोग किया परिणाम स्वरूप ''असमानता'' जातिवाद का सर्वमान्य सिद्धान्त बन गया और निम्न वर्गों का दमन करना पुनीत कत्तव्य।[28]

सामाजिक क्रम में दूसरे स्थान पर शोषक के रूप में वणिक वर्ग की स्वार्थ परता का पर्दाफाश करते हुए अम्बेडकर ने कहा था कि ज्ञात इतिहास में वणिक वर्ग सबसे बुरा परजीवी वर्ग है। यह वर्ग महामारियों के दौरान सम्पन्न रहता है। वणिक वर्ग ने अपने धन का प्रयोग गरीबी पैदा करने और बढ़ाने के लिए किया है। सम्पूर्ण गरीब, भूखा और अशिक्षित भारत वणिक वर्ग का बन्धक है। ब्राह्मणों ने भारत के मस्तिष्क को और वणिक वर्ग ने शरीर को गुलाम बनाया है तथा सत्ताधारी वर्गों से प्राप्त लाभ को दोनों ने आपस में बांट लिया है।[29]

जब सवर्ण जाति का प्रसंग आता है तो डॉ. अम्बेडकर का आशय यह नहीं होता कि सवर्ण वर्ग के

शत–प्रतिशत व्यक्ति अछूतों के खिलाफ हैं अपितु अम्बेडकर उन लोगों से घृणा करते थे जो जातिगत ऊंच–नीच, व्यक्ति द्वारा व्यक्ति को छूने पर अपवित्रता, सामाजिक विशेषाधिकार तथा असमानता की भावना से ग्रस्त थे।[30] समाज में सवर्ण वर्ग की प्रधानता के कारण ही समाज के सभी व्यक्तियों को न्याय और अधिकार नहीं मिल सकते। समस्त हिन्दू समाज के गठन का आधार जाति व्यवस्था होने के कारण डॉ. अम्बेडकर का कहना था कि जाति व्यवस्था की सबसे बुरी विशषता इसका समाज विरोधी होना है। सवर्ण तथा असवर्ण में एक लम्बा तथा कड़ा संघर्ष रहा है। अतः हिन्दू केवल, जातियों का वर्गीकरण न होकर अपने–अपने अस्तित्व तथा आदर्शों के लिए लड़ने वाले समूह है। जाति व्यवस्था तथा जातीय चेतना बने रहने के कारण ये वर्ग अपना परान संघर्ष भूले नहीं है, इस प्रकार जाति व्यवस्था ने विभिन्न हितों में एकता की स्थापना को रोका है।[31] इसी कारण एकता के अभाव ने लोकमत को असम्भव बना दिया। एक हिन्दू के लिए उसकी जाति ही लोकमत है। उसका उत्तरदायित्व केवल अपनी जाति के प्रति है और उसी कर्त्तव्य निष्ठा अपनी जाति तक ही सीमित हैं जाति व्यवस्था में योग्य व्यक्ति को पुरस्कृत नहीं किया जाता और न ही मजबूर या जरूरतमन्द के प्रति सहानुभूति अथवा दया होती है।[32]

इस प्रकार जाति व्यवस्था को वे समस्त बुराईयों का मूल आधार मानते थे। उन्होने जाति व्यवस्था की परिधि में संकीर्ण संकुचित, कैद हिन्दू समाज की आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक अवनति का कारण जाति व्यवस्था को मानते हुए इसे समूल नष्ट करने की अपील की। लेकिन अम्बेडकर इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं थे कि जाति व्यवस्था को समाप्त करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है, क्योकि उनका मत था कि स्वायत्तशासी होने के कारण जाति व्यवस्था के कट्टरपंथियों के हाथ में ऐसी निर्णयात्मक शक्ति है कि समाज सुधारकों को दण्डित करने के लिए वे जाति व्यवस्था को एक सशक्त हथियार के रूप में प्रयोग में लेते हैं। जाति व्यवस्था ने जन उदारता के बोध को नष्ट कर दिया है। एक आदर्श समाज के लिए गतिशीलता का होना आवश्यक है और भ्रातत्व ही प्रजातन्त्र का दूसरा नाम है।[33]

ऐसा नहीं है कि समाज के वर्गीकरण का भारतीय उदाहरण अनोखा है। विश्व के सभी समाजों में वर्गीकरण पाया जाता है। लेकिन इस संदर्भ में भारतीय समाज, एक अकेला समाज है जिसके वर्गीकरण का आधार जन्म पर आधारित जाति व्यवस्था है और जो अपने आप में लौह दीवारों से घिरा हुआ वर्ग है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि आधुनिक काल के ही नहीं अपितु मध्यकाल के समजा व धर्म–सुधारकों ने जाति व्यवस्था की आलोचना की और जातिगत भेदभावों को समाप्त करने की मांग की। लेकिन मध्यकाल से भी पूर्व जाति व्यवस्था के दर्शन पर प्रश्न चिन्ह लगाने तथा उसकी नीवं को हिलाने वाले गौतम बुद्ध प्रथम व्यक्ति थे जिन्होने अभागे दमित लोगों को जाति व्यवस्था से मुक्ति दिलाने का काम किया। इस काल में डॉ. अम्बेडकर ने स्वतन्त्रता तथा समानता का बिगुल अछूतों के बहरे कानों में बजाया।[34] यद्यपि डॉ. अम्बेडकर के प्रेरणा स्त्रोत गौतम बुद्ध ही थे लेकिन स्वयं शोषित तथा पीड़ित वर्ग से सम्बद्ध होने के कारण उनके विचारों में जाति व्यवस्था के प्रति गहरा आक्रोश, कड़ा विरोध, पूर्णतया नकारात्मक दृष्टिकोण तथा तीव्र आक्रामकता की भावना सदैव कायम रही। उन्होने कहीं, किसी भी स्थिति और किसी भी रूप में जाति व्यवस्था के अस्तित्व को सामाजिक समानता, न्याय, मानवता, प्रकृति तथा प्रजातन्त्र के प्रतिकूल बताया और इसे नष्ट करने की अनवरत 'अपील' की तथा अथक प्रयास किये। जाति व्यवस्था के नियम कानूनों द्वारा किये गये भेदभाव, दुर्व्यवहार तथा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास को अवरूद्ध करने के कारण डॉ. अम्बेडकर की अन्तरात्मा इस सीमा तक तिलमिला उठी कि उन्होने हिन्दू समाज की धमनियों मे रक्त के रूप में जाति व्यवस्था का संचरण पाया और उसके दमनात्मक चरित्र के कारण डॉ. अम्बेडकर ने स्पष्ट रूप से उद्घोषित किया कि हिन्दू सभ्यता को ''सभ्यता'' नहीं कहा जा सकता, यह तो मानवता का दमन कर उसे दास बनाने का षड़यन्त्र है।[35]

भारतीय समाज के सदियों से शोषित तथा दमित समुदाय के पीड़ित डॉ. अम्बेडकर सामाजिक समानता तथा न्याय पर आधारित एक आदर्श समाज की स्थापना के लिए सर्वप्रथम जाति व्यवस्था को समाप्त करना चाहते थे। उनका मानना था कि चतुर्वर्ण के आधार पर हिन्दू समाज का पुनर्गठन असम्भव है क्योंकि वर्ण व्यवस्था रिसने वाले बर्तन के समान ह या नाम पर दौड़ने के समान कठिन है। जब तक वर्ण का अतिक्रमण करने वाले व्यक्ति के विरूद्ध कानूनी प्रतिबन्ध नहीं लगाया जाता, वर्ण व्यवस्था अपने गुणों पर आधारित अस्तित्व कायम रखने में असमर्थ है। वर्ण व्यवस्था में जाति के रूप में विकृत होने की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है। अतः वर्ण व्यवस्था जाति व्यवस्था में परिवर्तित हो जायेगी।[36] इसलिए डॉ. अम्बेडकर कुछ तत्कालीन समाज सुधारकों के इस मत से सहमत नहीं थे कि जाति के स्थान पर वर्ण व्यवस्था की स्थापना कर दी जाय तो सभी व्याधियों की स्वतः चिकित्सा हो जायेगी।

जाति व्यवस्था की समाप्ति के लिए अम्बेडकर ने निम्नलिखित उपाय बताये है–इनका दृढ़ विश्वास था कि हिन्दुओं के दृष्टिकोण में मौलिक परिवर्तन के माध्यम से ही समाज सुधार व जाति व्यवस्था की समाप्ति की जा सकती है। इस मौलिक परिवर्तन के अभाव में हिन्दू समाज में किस प्रकार का वास्तविक सुधार नही हो सकता।[37] अम्बेडकर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का आधार काल्पनिक न होकर व्यावहारिक धरातल पर आधारित था। यही कारण है कि अत्याचार और अन्याय, अनाचार की पोषक जाति व्यवस्था की समाप्ति के लिए व्यग्र होते हुए भी उन्होने महसूस किया कि जाति व्यवस्था द्वारा उत्पन्न अस्पृश्यता और भेदभाव की प्रवृत्ति को समाप्त करना इतना आसान नहीं है। क्योंकि दो हजार सालों से मानव मस्तिष्क में पोषित ऐंठन को आप रात भर में समाप्त करके विपरीत दिशा में नहीं मोड़ सकते।[38] केवल पारस्परिक सहभागिता की अंतःक्रिया द्वारा ही सवार्णों और अछूता के बीच अजनबीपन को समाप्त किया जा सकता है।[39] इसीलिए अम्बेडकर ने छूआछूत की समाप्ति के पक्षधर नेताओं तथा आमलोगों से 'अपील' की कि वे अस्पृश्यों के प्रति अपनी सहानुभूति को व्यवहार में परिवर्तित कर प्रतिदिन के जीवन में सामाजिक सुधार को यथार्थ स्वरूप प्रदान करें। यह सोचना घोर क्रूरता है चूंकि

यह अन्याय (अस्पृश्यता) सदियों पुराना है अतः यह थोड़े दिन और कायम रहे तो कोई बुरी बात नहीं।[40] डॉ. अम्बेडकर का मानना था कि हिन्दुओं की जाति व्यवस्था में आस्था इसलिए नहीं है कि वे अमानवीय या बदमिजाज है, अपितु इसलिए है कि वे गूढ़रूप में धार्मिक है। इसलिए हिन्दू धर्म सबसे प्रमुख शत्रु है जिसने जाति व्यवस्था को विकसित किया है। शास्त्रों ने जनता को जाति–धर्म की शिक्षा दी है। अतः जब तक हिन्दू शास्त्रों की शिक्षाओं की पालना करते रहेंगे। जाति व्यवस्था बनी रहेगी। जाति व्यवस्था को समाप्त करने के लिए पहले शास्त्रों की मान्यताओं के मूल भाव को समझ कर परिवर्तित करना होगा।

जाति व्यवस्था की समाप्ति के लिए सभी जाति के सदस्यों में सहयोग तथा भ्रातृत्व की भावना का विकास होना आवश्यक है और यह तभी सम्भव है जबकि व्यक्ति अपनी कर्त्तव्य निष्ठा तथा उत्तरदायित्व को जातिगत दायरे से बाहर लाकर समय समाज के हित के लिए सोचे। डॉ. अम्बेडकर का कहना था कि विभिन्न जातियों को एक सूत्र में पिरोने का एक मात्र साधन अन्तरजातीय विवाह तथा भोज है। रक्त मिश्रण द्वारा ही विभिन्न जातियों में लगाव व अपनत्व की भावना का विकास इस सीमा तक हो सकता है कि वे अलगाव के जातिगत आधार को भुला सकें। इसके बिना जाति व्यवस्था को समाप्त नहीं किया जा सकता। तार्किक दृष्टि से तो यह विचार उपयुक्त है। लेकिन समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से विचार किया जाय तो स्पष्ट है कि विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक प्रतिबन्धों तथा जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में पिछड़ेपन के कारण सामूहिक स्तर पर हम अन्तर्जातीय विवाह को प्रोत्साहन नहीं दे सकते। साथ ही सुदृढ़ पृष्ठभूमि के अभाव में (जैसे–सहशिक्षा, औद्योगीकरण, शहरीकरण आदि) सामाजिक स्तर पर भी अन्तरजातीय विवाह दिखाई नहीं दे सकते। दूसरे, भारतीय संस्कृति में स्त्री तथा उसका बच्चा अपने पति व पिता का नाम और जाति धारण करते हैं इसलिए अन्तरजातीय विवाह के परिणामस्वरूप स्त्री एक जाति को अस्वीकार करके दूसरी जाति में प्रवेश पा लेती है। अतः यदि अन्तरजातीय विवाह के लिए पृष्ठभूमि तैयार नहीं की जाती तो अन्तरजातीय विवाहों के माध्यम से भी जाति–प्रथा को समाप्त नहीं किया जा सकता।[41]

निष्कर्ष

एक प्रजातांत्रिक समाज की स्थापना के लिए समानता, स्वतन्त्रता तथा भ्रातृत्व की भावना की पृष्ठभूमि का होना आवश्यक है। इसी आधार पर डॉ. अम्बेडकर ने संविधान के निर्माण के समय कुछ नए प्रावधानों को सम्मिलित किया जिसके फलस्वरूप आज जाति व्यवस्था पूर्णतः समाप्त तो नहीं हुई परन्तु इसकी परम्परागत भूमिका ने अपने आधुनिक परिवर्तित रूप को ग्रहण कर लिया है। अब सत्ता प्राप्ति के लिए जनता या निर्वाचकों में जातिगत आधार पर गतिशीलता कायम है। जो लोग सत्ता प्राप्त करना चाहते हैं। वे जाति के मुद्दे को जीवित रखेंगे। क्योंकि जब तक जाति–व्यवस्था जीवित रहेगी। ''वोट–बैंक'' के निर्माण के लिए आधार कायम रहेगा। ऐसी स्थिति में जाति व्यवस्था की समाप्ति का काम और भी जटिल हो जाता है। जब तक जाति व्यवस्था कायम रहेगी, सामाजिक तनाव तथा असमानताओं को समाप्त नहीं किया जा सकता। अतः अम्बेडकर के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हमें उनके द्वारा दिखाये गये विचारों के मार्ग को समय तथा परिस्थितियों के अनुसार आगे बढ़ाना होगा।[42] डॉ. अम्बेडकर समाज में असमान व्यवस्था के लिए वर्ण, जाति को उत्तरदायी मानते हैं।

इस प्रकार जहां जाति व्यवस्था की समाप्ति के लिए डॉ. अम्बेडकर द्वारा किया गया आह्वान लक्ष्य की प्राप्ति हेतु कारगर नीति के क्रियान्वयन के अभाव में निरर्थक प्रतीत होता है, और वर्तमान जातीय ध्रुवीकरण की स्थिति में में यह प्रश्न अधिक जटिल हो जाता है।

निष्कर्षतः अम्बेडकर का धर्म दर्शन, हिन्दू धर्म में व्याप्त भेदभाव रहित समाज की पुनर्रचना से सम्बद्ध है, तथापि लक्ष्य की प्राप्ति हेतु धर्म को साधन के रूप में प्रयुक्त करने में भिन्नता स्पष्ट है। अम्बेडकर के धर्म की प्रासंगिकता सामाजिक समानता के मूर्तिकरण में सहायक भूमिका के निर्वहन में निहित होने की आध्यता के कारण, हिन्दू धर्म ग्रन्थों को समस्त सामाजिक अन्यायों का आधार स्वीकार कर, उनके द्वारा प्रणीत जातिवाद की समाप्ति का आह्वान करती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शशि, एस.एम. (सं.)–अम्बेडकर एण्ड सोशल जस्टिस, खण्ड दो, पब्लिकेशन डिविजन, मिनिस्ट्री ऑफ इन्फॉर्मेशन, गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया, मार्च 1992, 82
2. कीर, धनन्जय–अम्बेडकर–लाइफ एण्ड मिशन, पापुलर प्रकाशन, बॉम्बे 1962, 92
3. आहलूवालिया, एस.के.ण्ड शशि, डॉ. अम्बेडकर एण्ड ह्यूमन राईट्स, विवेक पब्लिशिंग कम्पनी, दिल्ली, 1981, 61
4. वी.एन. सिंह–भारतीय सामाजिक चिन्तन, 286, विवेक प्रकाशन जवाहर नगर नई दिल्ली 2006
5. अम्बेडकर बी.आर.–सम्पूर्ण वांगमय, खण्ड एक, सूचना–प्रसारण मंत्रालय दिल्ली, 1993, 100
6. लोखण्डे जी.एस.–भीमराव रामजी अम्बेडकर, स्टलिंग पब्लिशर्स प्राईवेट लि. दिल्ली 1977, 101
7. नोट 12, 418
8. नोट 11, 91
9. नोट 14, 79
10. अम्बेडकर, बी.आर.–व्हाट कांग्रेस एण्ड गांधी हैव इन टु द अनटचैबल्स, ठक्कर एण्ड कम्पनी, बॉम्बे 1976, 186–87
11. नोट 15, 93
12. नोट 12, 415
13. नोट 15, 101
14. उपरोक्त
15. नोट 0, 170
16. नोट 12, 252
17. उपरोक्त, 497
18. नोट 14, 90–93
19. नोट 5, 153
20. नोट 15, 88
21. नोट 15, 91
22. उपरोक्त 33
23. उपरोक्त 66

24. नोट 20, 187
25. नोट14, 49–50
26. नोट 15, 34
27. नोट 20, 228
28. उपरोक्त 228
29. नोट 15, 112
30. नोट 12, 89
31. नोट 15, 72
32. उपरोक्त 76
33. उपरोक्त 78
34. नीम, होती लाल (सं.)–थॉट्स ऑन अम्बेडकर, सिद्धार्थ एजुकेशनल एण्ड कल्चरल सोसाइटी आगरा 1969, 32
35. अम्बेडकर बी.आर.–द अनटचैबल्स, अमृत बुक कम्पनी, दिल्ली, 1948 आमुख से
36. नोट 15, 112
37. नोट 13, 62
38. नोट 20, 195
39. उपरोक्त 138
40. नोट 21, 81
41. नोट 11, 136
42. उपरोक्त 136